गैर्वाणीगौरवग्रन्थमाला

गीर्वाणवाणीगौरवभूतप्रत्ननूतनलघुग्रन्थानां सङ्कलनम्

गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठशोधपत्रिकायाः
परिशिष्टम्

श्रीमद्रामाचार्यप्रणीतम्

श्रीराममहिम्नःस्तोत्रम्

भाषानुवादविभूषितम्



श्रीमद्रामाचार्यप्रणीतम्

श्रीरामहिम्नःस्तोत्रम्

भाषानुवादविभूषितम्



गैर्वाणीगौरवग्रन्थमाला

अष्टमम् सुमम्



संपादकौ

गयाचरण त्रिपाठी

माया मालवीय

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्रामाचार्यप्रणीतम्

श्रीराममहिम्नःस्तोत्रम्

भाषानुवादविभूषितम्

❀

संपादकोऽनुवादकश्च

डॉ० गयाचरणः त्रिपाठी

प्रयागस्थगङ्गानाथझाकेन्द्रीयविद्यापीठस्य

प्राचार्यः

❀

श्रीगङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्

चन्द्रशेखर आजाद पार्क

प्रयागः

१९९२

प्रकाशकः

डॉ० गयाचरण त्रिपाठी

प्राचार्यः

गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्

चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क

इलाहाबाद-२

मूल्यम्

मुद्रकः

शाकुन्तल मुद्रणालयः

३४, वलरामपुर हाउस

इलाहाबाद-२

FOREWORD

We are happy to publish a lucid Hindi translation of a beautiful Sanskrit hymn of praise composed in the honour of Śrī Rāma. This *Stotra* Called *Śrīrāmamahimnaḥ stotram* is not so widely known as it deserves to be on account of its merits. The author of this work, Śrī Rāmacārya (wich must be his adopted name after induction into the *Vaiṣṇava Sampradāya*), was an inhabitant of Ayodhyā. His source of inspiration was difinitely the *Śivamahimnaḥ stava* of Puṣpadanta, though, honestly speaking, he lacks the grandeur and erudition of his predecessor. However in the spontaneity and simplicity of expression, in the use of a transparent and lucid language and in the exubarence of the sentiments of ***bhakti***, it certainly surpasses Puṣpadanta and therefore deserves to be better known. Hence this effort. We hope that scholars will appreciate it.

Allahabad
30-3-92

Gaya C. Tripathi
Maya Malaviya

प्रस्तावना

हमारे प्राचीन पारिवारिक हस्तलेख-संग्रह में श्रीरामाचार्य द्वारा रचित यह **श्रीराममहिम्नःस्तोत्र** भी था। यदा कदा मैं इसे उलट-पलट कर देखा और पढ़ा करता था। इसके सरल संस्कृत में गुम्फित ललित श्लोक मुझे बहुत अच्छे लगा करते थे। इच्छा थी कि कभी इसका प्रकाशन करूँगा क्योंकि मैं यह समझता था कि यह अभी शायद अप्रकाशित है।

सन् १९८९ के प्रारंभ से जब मैं अपने शोधसंस्थान में पी-एच० डी० में प्रवेश हेतु छात्रों की मौखिक परीक्षा ले रहा था तो एक छात्र से मैंने कोई सुन्दर साहित्यिक श्लोक सुनाने के लिए कहा। छात्र संभवतः वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित था। उसने इसी **श्रीराममहिम्नःस्तव** का सर्वप्रथम श्लोक सुनाया जिसे सुन कर मैं चकित रह गया। मैंने उससे तुरन्त पूछा कि यह श्लोक कहाँ का है और तुमने कहाँ पढ़ा। उसने बताया कि यह **श्रीराममहिम्नःस्तव** का श्लोक है और मैंने इसे पहले कभी किसी पुस्तक में पढ़ा था। तब उससे पता चला कि राममहिम्नस्तव पहले संभवतः कहीं प्रकाशित हुआ था, यद्यपि मैंने स्वयं आज तक यह प्रकाशित प्रति नहीं देखी। इस जानकारी के बाद इसको मूल रूप में प्रकाशित करने के मेरे उत्साह में कुछ कमी आई।

अभी सन् १९९१ की ग्रीष्म ऋतु में मैं चिकित्सकीय अवकाश पर था और घर पर ही रह रहा था। पास में बहुत समय था। उस समय इस स्तोत्र का हिन्दी अनुवाद करने की इच्छा मन में जागी और भगवान् राम की कृपा से यह शीघ्र ही संपन्न भी हो गया। हिन्दी अनुवाद के साथ यह स्तोत्र निश्चय ही

अधिक लोकप्रिय होगा। ऐसे अनेक विद्वान् और सहृदय पाठक भारत में हैं जो सीधे संस्कृत समझने में कुछ कठिनाई का अनुभव करते हैं पर हिन्दी-अनुवाद की सहायता से उसे सरलतया समझ जाते हैं। ऐसे लोगों को इससे लाभ होगा।

यह स्तोत्र अभी कुछ अप्रचलित सा है। जितना सुन्दर, सरस, सरल एवं ललित, पर साथ ही दार्शनिक दृष्टि से गम्भीर यह है, उसको देखते हुए इसका व्यापक प्रचार-प्रसार होना चाहिये। प्रतिदिन पाठ करने की दृष्टि से भी इसका उपयोग निर्विवाद है।

इसके रचयिता श्रीमद्रामाचार्य जी श्री चतुर्भुजाचार्य जी के शिष्य थे और संभवतः स्थायी रूप अयोध्या में किसी मठ में निवास करते थे, जहाँ उन्होंने इस स्तोत्र की रचना की। उनका समय निर्धारित करना कठिन है पर मेरी दृष्टि से लगभग १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१६००-१६५०) में इसकी रचना होनी चाहिये। हमारे पास इस स्तोत्र का जो हस्तलेख है वह वि० संवत् १८८५ अथवा सन् १८२८ का है। श्रीरामाचार्य ने पुष्पदन्त के सुप्रसिद्ध शिवमहिम्नःस्तोत्र के प्रेरणा ग्रहण की है। उसी की भाँति शिखरिणी छन्द में इस स्तोत्र की रचना की है और कुछ स्थानों पर शिवमहिम्नःस्तोत्र की शब्दावली भी उसने ग्रहण कर ली है। आशा है कि रामभक्त सहृदय साधकगण इस स्तोत्र का नित्य पाठ करके अपना जीवन सार्थक करेंगे।

श्रीप्रयाग
श्रावण शुक्ल ११, सं० २०४८
(२१ अगस्त १९९१)

विनीत
गयाचरण त्रिपाठी



श्रीमद्रामाचार्य विरचितं

॥ श्रीराममहिम्नःस्तोत्रम् ॥

भाषानुवादसहितम्



महामोहावर्ते पतितमिह भूयो भ्रमियुतम्
शरण्यस्त्वत्तोऽन्यो रघुवर न गोपायितुमलम् ।
अतस्त्वत्पादाम्भोरुहयुगलमाश्रित्य सुतरां
समीहे संसाराद् वृजिननिचयादुद्धर विभो ॥१॥

इस संसार-सागर की महामोह रूपी भँवर में फंस कर निरन्तर चक्कर खाते हुए पतित प्राणी की, हे रघुनाथ, आप जैसे शरणागत वत्सल को छोड़ कर कौन रक्षा कर सकता है ? अतः मैं आपके चरण कमलों का आश्रय लेकर यह प्रार्थना करता हूं कि हे प्रभो, आप मेरी इस संसार से रक्षा कीजिए जो पापों का भण्डार है ॥१॥

स्वयं त्वव्यक्तः सन् जगदखिलमिच्छादिकरणैः
समुत्पत्तिं नीत्वा ह्यवसि सततं श्रीरघुपते।
युगान्ते सर्वं तद् हरसि किल रौद्रेण वपुषा
त्वमेकः सर्वात्मन् विहरसि न चान्यो गुणनिधे।।२।।

आप स्वयं तो पूर्णतः अविकारी और अव्यक्त बने रहते हैं किन्तु अपनी इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शक्ति आदि साधनों के माध्यम से इस दृश्यमान जगत् की उत्पत्ति करते हैं, सदैव उसकी रक्षा किया करते हैं और फिर युग की समाप्ति पर अपने रौद्र रूप द्वारा (या रुद्र का रूप धारण करके) उसको विनष्ट कर देते हैं। हे गुणशाली (अथवा सत्त्व, रजस्, तमस् के समन्वय), इस जगत् के भीतर आप ही सब प्राणियों की आत्मा के रूप में अन्तर्यामीभाव से विहार करते रहते हैं। आपको छोड़ कर अन्य कोई भी जगदात्मा के रूप में प्रतिष्ठित नहीं है।।२।।

रमन्ते योगीन्द्रास्त्रिपुरहरमुख्यास्त्वयि सदा
समाधौ विश्वात्मन् नियमितहृषीका रघुपते।
तथाप्येते पारं निखिलनिगमागोचर विभो
महिम्नस्ते नूनं व्रजितुमवशा नैव कुशलाः।।३।।

हे सम्पूर्ण जगत् के प्राण-स्वरूप विश्वात्मन्! भगवान् शिव आदि परम योगीश्वर अपनी इन्द्रियों को संयमित और चित्त को स्थिर करके समाधि की अवस्था में आपके अन्दर नित्य रमण किया करते हैं (रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामः, योगी लोग समाधि की अवस्था में जिस परमतत्त्व में रमण करते हैं, उसे 'राम' कहते हैं)। तथापि ये लोग आपकी अगाध महिमा का अन्त पाने में सर्वथा असमर्थ रहते हैं क्योंकि आपके स्वरूप को तो साक्षात् वेद भी नहीं समझ पाए जो परम पुरुष के निःश्वास कहे जाते हैं और वे भी, 'नेति' 'नेति'* कह कर ही आपका वर्णन करते हैं।।३।।

---

*ईश्वर की निषेधात्मक व्याख्या 'न-इति' ('ऐसा नहीं')। ऋषियों का कथन है कि ईश्वर मन और वाणी से परे हैं अतः कोई नहीं बता सकता कि 'वह कैसा है'; केवल यही कहा जा सकता है कि 'वह कैसा नहीं है'। जगत् में जो कुछ भी दिखाई या सुनाई देता है या जो कुछ भी कल्पना का विषय हो सकता है, ईश्वर वैसा नहीं है, उससे भिन्न है।

कदाचिद् भौमान् वै गणयति कणान् कोऽपि मतिमाँ-
स्तथा पारावारोदकलवचयान् वै रघुपते।
क्वचिन्नक्षत्रौघं वियति गणनायां नयति वै
गुणानां ते पारं व्रजितुमखिलानामकुशलः ॥४॥

ऐसा तो संभव है कि कभी कोई बुद्धिमान् व्यक्ति पृथ्वी के समस्त अणु-परमाणुओं की गणना कर डाले, अथवा समुद्र में कितने जल-बिन्दु हैं इसका हिसाव लगा ले। यह भी संभव है कि आकाश में विद्यमान नक्षत्रों की कोई गिनती कर ले, किन्तु यह सम्भव नहीं है कि कोई आपके समस्त गुणों और शक्तियों का ओर-छोर पा सके क्योंकि वे असंख्य और अपरिमेय हैं ॥४॥

ऋतं सत्यं भूमन् सगुणमगुणं रूपमुभयं
चिदानन्दं बिभ्रन्निखिलनिगमैरप्यविदितम्।
समष्टिस्ते विश्वं विलसति विराड्रूपमपरं
तदेतद्वै किञ्चित् स्फुरति हृदये चैव विदुषाम् ॥५॥

हे महामहिमशाली, आप स्वयमेव जगत् का नियमन करने वाले ऋत-तत्त्व हैं। अपरिवर्तनशील रूप से सदैव विद्यमान रहने के कारण आप को ही 'सत्य' तत्त्व भी कहा जाता है (तु० की०, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म')। आपके सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार के रूप हैं। इसके अतिरिक्त आप विशुद्ध चैतन्य-स्वरूप एवं अखण्ड आनन्दमय हैं, किन्तु आपका वास्तविक स्वरूप तो वेदों की भी समझ से परे की वस्तु है। यह समस्त चराचर विश्व वस्तुतः आपका ही मूर्त रूप है। यह सब अत्यन्त गूढ़ है और बिरला ही कोई ऐसा मनुष्य होगा जो आपके वास्तविक स्वरूप को समझ सके ॥५॥

विरञ्चीशेन्द्राद्यैरमरनिवहैः सिद्धमुनिभिः
स्तुतस्त्वं भूभारव्यसनमपहर्तुं सुरपते ।
विभुः कौशल्यायां दशरथगृहेष्वाविरभवस्
समुद्भूतया चक्रे निजपदकृतार्थां वसुमतीम् ।।६।।

जव ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि देवताओं और सिद्धों तथा मुनियों ने पृथ्वी का भार दूर करने के लिये स्तुतिपूर्वक आपसे प्रार्थना की तो सर्वव्यापी और सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी आप महाराज दशरथ के घर में कौशल्या के पुत्र के रूप में प्रकट हो गये और अपने पावन चरणों के निक्षेप से आपने वसुमती (रत्नमयी) कही जाने वाली इस पृथ्वी को भी धन्य कर दिया ।।६।।

मुनेर्विश्वामित्राच्छरणद वलां चाप्यतिवलाम्
महाविद्यां प्राप्य प्रणतजनसौभाग्यद विभो ।
शरेणैकेन त्वं निशिचरवधूं चातिमहतीं
महाघोरां हत्वा विपिनमभयं चैव कृतवान् ।।७।।

हे शरणागत वत्सल एवं प्रणतजनों को सौभाग्य प्रदान करने वाले, आपने मुनि विश्वामित्र से 'वला' एवं 'अतिवला' नामक दो अलौकिक महाविद्याएँ प्राप्त करके एक ही वाण से उस दीर्घ-काय एवं भीषण राक्षसी (ताड़का) का वध करके मुनि विश्वामित्र के वन्यप्रदेश को सर्वथा निरापद कर दिया ।।७।।

करालास्यं घोरं निशिचरयुगं कौणपवरम्
श्रुतीनां द्वेष्टारं मुनिमखनिघाते च निरतम् ।
सुबाहुं मारीचं निशितविशिखेनोरसि दृढम्
निहत्यैकेनैवाध्वरमिह जुगोप क्रतुधियाम् ।।८।।

उन भीषण सुवाहु और मारीच नाम के राक्षसों को जिनका मुख अत्यन्त विकराल था, जो वेदों से घृणा करते थे और निरन्तर ऋषियों के द्वारा संपादित यज्ञों में विघ्न डाला करते थे, आपने दृढ़ता से एक ही पैना वाण चला कर मार गिराया और यज्ञकर्ता ऋषियों के यज्ञ की रक्षा की ।।८।।

शिलाभूतां शापाच्चरणरजसा गौतमवधूं
यथापूर्वां कृत्वा परमसुभगां चातिविमलाम् ।
महोत्तुंगं चापं सपदि शितिकण्ठस्य सुदृढं
द्विधा खण्डं चक्रे जनकनगरीं प्राप्य मुनिना ।।९।।

फिर मुनि विश्वामित्र के साथ जनकपुरी जाते हुए मार्ग में आपने गौतम ऋषि की पत्नी (अहल्या) को, जो शाप के कारण प्रस्तर-शिला वन गई थी, अपने चरणों की धूलि से शाप-मुक्त करके निर्मल कान्ति वाली परम सुन्दरी स्त्री के रूप में परिणत कर दिया और फिर [जनक की राजसभा में] भगवान् नीलकण्ठ (शिव) के उस विशाल सुदृढ़ धनुष को तोड़ डाला ।।९।।

शरद्राकेशास्यां विमलकलधौताङ्गरुचिरां
स्फुरद्रत्नाकल्पां जनकतनयां विश्वजननीम् ।
शुभाहे यद्रामो विधिवदुपयेमे सुललिताम्
महेन्द्राद्यप्रह्वामरमुकुटनीराजितपदाम् ।।१०।।

तत्पश्चात् आपने शरत्-पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाली और सुधा के समान निर्मल, सुरम्य और गौरवर्ण के अंगों वाली, जनक की पुत्री, जगज्जननी, सुन्दरी सीता का शुभ मुहूर्त में पाणिग्रहण किया जो रत्नजटित वस्त्राभूषण धारण किये हुए थीं। उस समय इन्द्र आदि देवताओं ने आकर माँ सीता के सम्मुख अपना शीश झुकाते हुए अपने मुकुट को उनके चरणों पर रख कर उनकी वन्दना की ।।१०।।

महाघोरं त्रुटयत्त्रिपुरहरचापस्य निनदं
समाकर्ण्य क्रोधाद् भृगुकुलपतेः क्षत्रियरिपोः ।
पथि प्राप्तस्यास्य स्मयमपि जहर्थ त्वमतुलं
महावीर प्रद्योतनकुलमणे पाहि नितराम् ।।११।।

जब त्रिपुरविनाशक भगवान् शंकर के टूटते हुए धनुष के भीषण शब्द को सुन कर क्षत्रियों के शत्रु परशुराम क्रोध में भर कर जनकपुरी की ओर आते हुए मार्ग में आपसे मिले तो आपने उनका असीमित अभिमान विनष्ट कर दिया। हे सूर्यवंश के मणि, अतुल बलशाली राम, आप मेरी सदैव रक्षा करें ।।११।।

सुराणां रक्षार्थं सपदि पितुराज्ञां सकरुणां
समादायागच्छद् वनमनुजयुक्तो वनितया ।
जनस्थानं प्राप्यामलवटतरूणां फलवताम्
अधश्चक्रे वासं दनुजकुलनाशाय च विभुः ।।१२।।

हे सर्वव्यापी, इसके पश्चात् आपने देवताओं की रक्षा के लिये पिता की [वनवास संवन्धी] आज्ञा तुरन्त मान कर छोटे भाई तथा पत्नी को साथ लिया और जनस्थान नामक प्रदेश में जाकर फल-युक्त वृक्षों तथा सघन वृक्षों के नीचे अपनी कुटिया वनाई जिससे आप वहाँ रहते हुए राक्षसों के कुल का विनाश कर सकें ।।१२।।

प्रभो लङ्केशस्य प्रवलतमवीर्यस्य भगिनीं
विरूपां कृत्वा त्वं तदनु खरमुख्यान्निशिचरान् ।
सुरारातीन् हत्वा द्विजकुलनिघातेषु निरतान्
निरातङ्कं चक्रे विपिनमपि सेव्यं जनपदैः ।।१३।।

हे प्रभो, प्रवल शक्तिमान् लङ्काधिपति रावण की बहन [के अभद्र व्यवहार से खिन्न होकर] आपने लक्ष्मण के माध्यम से उसे उसके चेहरे को कुरूप करवा दिया और उसके पश्चात् खरदूषण आदि उन राक्षसों को मार कर, जो देवों के शत्रु थे और निरन्तर मुनियों-ब्राह्मणों आदि के विनाश में लगे रहते थे, उस जंगल को पूर्णतः निरापद कर दिया और तव वहाँ पर नागरिक जन निर्भय होकर विचरण करने लगे ।।१३।।

दशग्रीवाज्ञप्तः कनकमृगरूपेण विचरन्
विचित्रो मारीचः प्रसभमभिजातः स्वनिकटे ।
असौ मायावीति प्रणतजनसौभाग्यद विभो
त्वया ज्ञात्वा नीतः सपदि विशिखेनामरपुरीम् ।।१४।।

दशानन रावण की आज्ञा से जब मारीच एक विचित्र प्रकार के स्वर्ण-मृग का रूप धारण करके आपके सम्मुख विचरण करने लगा तो, हे प्रणतपाल रघुनाथ, आपने उसके मायावी रूप को जान कर एक ही बाण से उसको स्वर्ग लोक भेज दिया ।।१४।।

मुमूर्षुः पौलस्त्यः कपटपटुवेषेण कुमतिः
परोक्षे यत्सीताहरणमकरोच्छ्रीरघुपते ।
सुराणां रक्षार्थं रजनिचरनाथस्य हननं
विमृश्यैतत् सर्वं खरहर तवैवेङ्गितमभूत् ।।१५।।

हे रघुपति, क्योंकि पुलस्त्यवंशी रावण की मृत्यु समीप आ गई थी इसलिये वह दुर्बुद्धि [साधु का] कपट वेष धारण करके आया और आपकी अनुपस्थिति में माँ सीता का अपहरण करके ले गया । वस्तुतः, 'देवों की रक्षा के लिये राक्षसों का विनाश आवश्यक है' यह आपने भली-भाँति मन में विचारा और तब आपकी ही मूल प्रेरणा से यह सब घटित हुआ ।।१५।।

वियोगे जानक्यास्त्विह मनुजभावेन विचरन्
जटायुं दृष्ट्वा वै विपिनगतमासन्नमरणम् ।
त्वया तस्योद्धारः स्वकरकमलेनैव विहित-
स्तवैतद्वात्सल्यं विलसति हि भक्तेष्वतितराम् ।।१६।।

जब आप जानकी के वियोग में एक सामान्य मानव की भाँति दुःखी होकर नर-लीला कर रहे थे तो आपने जंगल में एक स्थान पर मरणासन्न अवस्था में गृद्ध जटायु को देखा। उस समय आपने स्वतः अपने कर-कमलों से उठा कर उसका उद्धार किया। आपका अपने भक्तों पर इस प्रकार का अतिशय वात्सल्य सदैव देखने में आता है ।।१६।।

कबन्धं क्रव्यादं निशितकरवालेन महता
द्रुतं हत्वा पम्पातटमनुजयुक्तश्च गतवान् ।
युवां दृष्ट्वा ज्ञातुं प्लवगपतिना वायुतनयः
समाज्ञप्तश्चागाद् वरद तव राद्धान्तमखिलम् ।।१७।।

तत्पश्चात् आपने तीक्ष्ण तलवार से मांसाशी कबन्ध नामक राक्षस का शीघ्रतया वध कर दिया और फिर लक्ष्मण के साथ पम्पा सरोवर के तट पर पहुँचे। वहाँ वानरों के अधिपति (सुग्रीव) ने आप दोनों को देख कर वायु-पुत्र (हनुमान्) को आपकी जानकारी लेने के लिये भेजा। हे वरद, उन्होंने [ब्राह्मण वेश में] आकर आपका संपूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया ।।१७।।

समाकर्ण्य त्वत्तः सकलमसुरारातिममलं
विदित्वा निःशङ्कं दशरथसुतं त्वां रघुपते ।
महोत्साहान्नीतः सपदि गिरिपृष्ठं हनुमता
प्रभुः सुग्रीवेण प्लवगपतिना सख्यमकरोत् ।।१८।।

हे रघुपति, आपसे आपका समस्त वृत्तान्त सुन कर और यह जानकर कि आप असुरों के शत्रु हैं और दशरथ के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए हैं, निःशंक भाव से हनुमान् आपको बड़े उत्साह के साथ तुरन्त पर्वत के शिखर पर आसीन वानरराज सुग्रीव के पास ले गये जहाँ आप प्रभु ने उनके साथ मैत्री संवन्ध स्थापित कर लिया ।।१८।।

कपीशं हत्वा वै वलिमतुलवीर्यस्मयभरं
दुराधर्षं देवैरसुरनिवहैरप्यसुलभम् ।
त्वया सुग्रीवाय प्लवगकुलराजेन्द्रपदवी
प्रदत्ता देवेश प्रणतजनवात्सल्यजलधे ।।१९।।

वानरों के अधिपति, अतुल वलशाली और परम अभिमानी वालि को मार कर, जिसका सामना करना कठिन था और जिसकी देवता और असुर भी सरलता से वरावरी नहीं कर सकते थे, आपने वानरों के अधिपति की पदवी सुग्रीव को दे दी जिससे सिद्ध है कि आप अपने आश्रितों के लिये वात्सल्य के सागर हैं ।।१९।।

प्रतापात्ते नूनं सलिलनिधिमुल्लंघ्य तरसा
गतो लंकां दृष्ट्वा जनकतनयां चातिविमलाम् ।
निहत्याक्षं दग्ध्वा पुरमथ समुज्जास्य विपिनं
हनूमान् त्वत्पादं पुनरपि समागाद् रघुपते ।।२०।।

हे रघुपति, सुनिश्चित रूप से आपके ही प्रताप के प्रभाव से हनुमान् समुद्र को तेज़ी से लाँघ कर लंका पहुँच गये और वहाँ परम विशुद्ध जानकी जी के दर्शन कर, अक्षकुमार का वध करके, लंका पुरी को जला कर तथा वहाँ के उपवन को उजाड़ कर आपके चरणों में वापिस लौट आए ।।२०।।

विदित्वा सीतायाः पवनजमुखाद् दुःखमतुलं
विहन्तुं क्रव्यादेश्वरमपि तथा राक्षसकुलम् ।
प्रतस्थे सुग्रीवाङ्गदहनुमदाद्यैः कपिभरैः
सुवीरामादाय प्लवगकुलसेनां बलवतीम् ।।२१।।

पवनपुत्र हनुमान् के मुख से सीता का असह्य दुःख सुन कर, राक्षसराज रावण एवं उसके कुल का वध करने के लिये आपने सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान् आदि वीरों से युक्त बलवती वानर-सेना को लेकर उसके ऊपर चढ़ाई कर दी ।।२१।।

प्लवंगैर्भल्लूकैरमितभुजवीर्यैः परिवृतो
निषङ्गी कोदण्डं शरमपि दधानः करतले।
क्रमान्मार्गं नीत्वा सलिलनिधितीरे सुविपुले
गतस्त्वं सुग्रीवाङ्गदहनुमदाद्यैः कपिवरैः ।।२२।।

अपने अमित बलशाली वानरों तथा भालुओं से घिरे हुए आप कंधे पर धनुष रखे, पीठ पर तरकश बाँधे तथा हाथ में बाण लिये, धीरे-धीरे रास्ता पार करते-करते, सुग्रीव, अंगद तथा हनुमान् के साथ विशाल समुद्र के तट पर आ पहुँचे ।।२२।।

तवाग्रे तत्रागाच्छरणद दशास्यानुजवरः
प्रपन्नस्त्वत्पादाम्बुजयुगलमाराध्यममरैः।
कृपापारावारामितगुणनिधे सिन्धुपुलिने
त्वया दत्ता तस्मै वृजिनहर लंकेशपदवी ।।२३।।

हे, कृपा के सागर, अगणित गुणों की खान, शरणागत-वत्सल प्रभो, उसी समय दशानन के छोटे भाई ने समुद्र तट पर आकर आपके उन चरण कमलों में शरण ली जिनकी आराधना देवता भी किया करते हैं। आपने, हे पाप [एवं दुःख] विनाशक, उसी समय उसे लंकेश की पदवी प्रदान कर दी ।।२३।।

उषित्वा तत्तीरे त्रिदिनमरविन्दाक्ष कपिभिः
ततः किञ्चित्क्रोधाभिनयनभयार्तो जलनिधिः ।
पुरो भक्त्या प्रह्वो रुचिरवचनैः श्रीरघुपतेः
स्तुतिं चक्रे शश्वत् पुलकिततनुर्गद्‌गदगिरा ।।२४।।

हे कमलनयन, आपने उस समुद्रतट पर वानरों के साथ तीन दिन तक निवास किया । उसके पश्चात् किञ्चित् क्रोधाविष्ट होने का अभिनय करके आपने समुद्र पर चढ़ाई करने की ठानी, जिससे सागर अत्यन्त भयभीत हो गया और भक्ति भाव से झुककर मधुर वचनों से उसने रोमाञ्चित शरीर एवं गद्‌गद वाणी के द्वारा, हे रघुपति, बड़ी देर तक आपकी स्तुति की ।।२४।।

अकूपारस्योक्त्या दशदिशि गतैर्वानरभटै-
स्त्वयाऽऽज्ञप्तैर्नीता निजभुजबलैः प्रस्तरचयाः ।
पुनस्तैः पाषाणैर्विपुल इह नीलेन रचितो
महासेतुर्वार्द्धौ तदिह तव नाम्नोऽस्ति महिमा ।।२५।।

तब समुद्र की सलाह पर, आपकी आज्ञा से वानर वीर दसों दिशाओं में गये और अपनी भुजाओं के बल से बड़े-बड़े प्रस्तर-खण्ड उखाड़ कर ले आए । फिर [राम नाम से अंकित] उन पत्थरों के द्वारा कपिश्रेष्ठ नील ने समुद्र की उत्ताल तरङ्गों के ऊपर एक विशाल महासेतु का निर्माण किया जिससे आपके नाम की महिमा सुस्पष्ट है ।।२५।।

यदेते पाषाणाः पयसि सततं मज्जनपरा-
स्तरन्त्यब्धौ नूनं जगति परमं चाद्‌भुतमिदम् ।
किमाश्चर्यं यस्य क्षणचलितनेत्रान्तविभवात्
कटाक्षात्ते नूनं कति कति न सन्त्यण्डरचनाः ।।२६।।

यह कितना अद्‌भुत है कि जो पत्थर भारी होने के कारण सदैव पानी में डूब जाते हैं, वे आपकी महिमा से समुद्र में तैरने लगे। अथवा जो अपने नेत्रों के मन्द स्पन्दन मात्र से जन्य कटाक्ष द्वारा अगणित ब्रह्माण्ड उत्पन्न करने में समर्थ है, उसके संबन्ध में यह कौन सा आश्चर्य का विषय है ? ।।२६।।

समुत्तार्याशेषान् प्लवगनिवहान् लक्ष्मणयुत-
स्ततो गत्वा लंकां स्वयमपि समुत्तीर्य जलधिम् ।
निहत्याजौ सर्वान् रजनिचरवृन्दांश्च सकुलम्
दशग्रीवं हत्वा ह्यभयमसुरैः स्वर्गमकरोत् ।।२७।।

आपने सर्वप्रथम सम्पूर्ण वानरसेना को समुद्र के पार उतारा, उसके वाद स्वयं भी लक्ष्मण सहित पार उतरे और लंका पहुँचे। वहाँ युद्ध में राक्षसों के समूह को विध्वस्त करके रावण को भी उसके परिवार के साथ समाप्त कर दिया और इस प्रकार देवताओं को असुरों के भय से मुक्त कर दिया ।।२७।।

विरञ्चीशेन्द्राद्यैरमरनिवहैः सिद्धमुनिभिः
स्तुतिं स्तोत्रैः कृत्वा कुसुमचयवृष्टिं सुविपुलाम् ।
कटाक्षेणैवैतांस्त्रिदशवरमुख्यान् करुणया
विलोक्य प्रध्वस्तं भयमखिलमेवं प्रकुरुषे ।।२८।।

तब ब्रह्मा, शिव एवं इन्द्र आदि के साथ देवों के समूह ने, सिद्धों ने तथा मुनियों ने दिव्य स्तोत्रों से आपकी स्तुति की और आपके ऊपर विपुल पुष्पवृष्टि की। आपने अपनी करुणामयी स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए देवों को कृतार्थ किया और उनको निर्भय कर दिया ।।२८।।

जनानां तुष्ट्यर्थं रिपुगृहगतां पौरजनता-
समक्षं वैदेहीमनलमुखविष्टां सुचरिताम् ।
प्रमाणीकृत्य त्वं धनपतिविमानेन नभसा
वितन्वन् स्वेषां वै सुखमतुलमागान्निजपुरीम् ।।२९।।

लोगों के संतोष के लिये आपने नगर की जनता के सम्मुख वैदेही को अग्नि में प्रवेश करने की आज्ञा दी और इस प्रकार सबके समक्ष सीता को निष्कलंक प्रमाणित करके कुबेर के विमान (पुष्पक) द्वारा अपने नगर अयोध्या वापिस आकर आपने अपने आत्मीय जनों को आनन्दित किया ।।२९।।

सहर्षं वर्षाणामयुतमधिकुर्वन् वसुमतीं
सुराज्यं वैदेहीरमण कृतवानीतिरहितम् ।
अयोध्यायां देवासुरनृपकिरीटाग्रनिहितै-
र्महारत्नैर्नीराजितचरणपङ्केरुह विभो ॥३०॥

हे सीता के स्वामी, दस सहस्र वर्षों तक आपने प्रसन्नतापूर्वक अयोध्या में रहते हुए इस पृथ्वी पर भली भाँति राज्य किया और अपनी प्रजा को उस काल में अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि दैवी आपदाओं (ईति) से सुरक्षित रखा। हे प्रभो, उस समय आपके चरणकमलों की समर्चना देवता, असुर तथा बड़े-बड़े राजा आकर अपने मुकुटों में खचित मणियों से किया करते थे ॥३०॥

कृशानुः शेषाद्यः शशधरयुतो बीजमिति ये
भजन्ति ध्यायन्तस्तवचरणपंकेरुहयुगम् ।
गृहे तेषां पद्मा विहरति मुखे गीः सुललिता
सुभोगान् भुक्त्वान्ते तव वरपदं यान्ति परमम् ॥३१॥

आपके चरण कमलों का ध्यान करते हुए जो आपके गोपनीय बीजमंत्र रां का जप करते रहते हैं उनके घर में सदैव लक्ष्मी और सरस्वती विराजमान रहती हैं और जीवन में अच्छे-अच्छे भोगों को भोग कर अन्त में वे आपके श्रेष्ठ परमपद को प्राप्त होते हैं। (कृशानुः = अग्नि, अग्नि का वीजाक्षर है 'र'। शेष = आ, शशधरः = चन्द्रमा = विन्दु अथवा अनुस्वार)।

स्वबीजं शेषाग्नी दहनमपरश्चैव पवनो
तमोऽन्तःषड्वर्णः परमपदहेतुश्च भजताम् ।
इमं मन्त्रं यो वै जपति गुरुवक्त्रादधिगतं
जगत्पूज्यो भोगान् भुवि परमदिव्यान् स लभते ।।३२।।

जो गुरुमुख से प्राप्त करके भगवान् राम के स्ववीज (रां) के साथ 'रामाय नमः' जोड़ कर इस षडक्षर मन्त्र (अथात 'रां रामाय नमः') का नित्य जप करता है वह सम्पूर्ण विश्व में पूजा जाता है । अपने जीवन काल में तो वह दिव्य भोग भोगता ही है, साथ में [मृत्यु के अनन्तर भगवान् विष्णु के] परम पद को प्राप्त करता है । (शेषाग्नी = अग्नि + शेष अर्थात् र + आ या 'रा', बीजाक्षर नित्य बिन्दु युक्त होता है अतः 'रां' । दहन = अग्नि, अग्नि का बोजाक्षर 'रं' है अर्थात् र वर्ण । मपरः = जिसके वाद में म हो अर्थात् राम । पवनः = वायु का बीजाक्षर 'य' । पूरे को मिला कर शब्द वना 'रामाय' । नमोऽन्तः = जिसके अन्त में नमः शब्द हो । इस प्रकार बीजमन्त्र 'रां रामाय नमः' यह है) ।।३२।।

घनश्यामं विद्युत्प्रभवसममाकल्परुचिरं
सरोजाक्षं चैवामितमदनलावण्यसुभगम् ।
तडिद्वर्णां वामे जनकतनयां राघवमुखं
प्रपश्यन्तीं ध्यायन् भजति परमां सिद्धिमतुलाम् ।।३३।।

जो साधक मेघों के समान श्यामवर्ण के सलोने शरीर वाले, विद्युत् के समान पीले रंग के चमकीले और सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए, कमल के समान नेत्र वाले और असंख्य कामदेवों की समवेत सुन्दरता के समान लावण्यशाली भगवान् राम का ध्यान करता है जिनके वाईं ओर विद्युद्वर्णा (स्वर्ण के समान शारीरिक कान्ति वाली) जानकी जी खड़ी हुई स्नेहपूर्वक भगवान् राम के मुखारविन्द को निहार रही हैं, ऐसा साधक अतुलनीय सिद्धियों को प्राप्त करता है ।।३३।।

अनन्तान्याहुस्ते बत विविधरूपाणि भगवन्
न तानि ध्यातुं वै कथमपि समर्थाश्च विबुधाः ।
विभूतीनामन्तं तव विमल को वेत्तु नितरा-
मतद्व्यावृत्या वै त्वयि सकलवेदाश्च चकिताः ।।३४।।

हे भगवन् आपके रूप एवं आपकी विभूतियाँ अनन्त हैं; उन सबका ध्यान करने में देवता भी कभी समर्थ नहीं हो पाते। हे, निर्मल, आपकी सामर्थ्य एवं आपके ऐश्वर्य का भला कौन अन्त पा सकता है जबकि सम्पूर्ण वेद भी विस्मित भाव से 'नेति' 'नेति' कह कर ही आपका वर्णन करते हैं* ।।३४।।

महद् यत्ते रूपं सजलजलदाभं सुललितं
तदेतत् तत्त्वज्ञा मुनिवरगणा हृत्सरसिजे ।
मुहुर्ध्यायन्तो वै विगतविषयाः सङ्गरहिताः
ययुर्नित्यानन्दं पदममरवन्द्यं रघुपते ।।३५।।

हे रघुनाथ, आपका जो यह जल से भरे हुए मेघ के समान रमणीय श्यामल रूप है उसको तत्त्वज्ञानी श्रेष्ठ मुनिजन अपने हृदय-कमल में वार-वार ध्यान करते हुए विषय-तृष्णा से विमुक्त होकर जगत् के प्रति आसक्ति से रहित हो जाते हैं और देवों के द्वारा वन्दनीय आपके उस परम-पद को प्राप्त करते हैं जहाँ आनन्द का नित्य साम्राज्य है ।।३५।।

---

* यहाँ शिवमहिम्नःस्तव (श्लोक २) का—

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्याऽयं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

यह अंश तुलनीय है । तत् (वह) शब्द यहाँ ब्रह्म का वाची है । अतत् =जो ब्रह्म या परमेश्वर न हो । व्यावृत्ति का अर्थ है निरसन या निराकरण । विश्व में जितनी भी वस्तुएँ विद्यमान हैं या जिनकी कल्पना हो सकती है, परमेश्वर उन सबसे पृथक् है अतः उसकी केवल निषेधात्मक परिभाषा ही हो सकती है । जो कुछ भी हम देखते-सुनते या सोचते-समझते हैं, उससे जो भिन्न हैं, वही ब्रह्म या परमेश्वर है । यही 'अतद्व्यावृत्ति' का भाव है ।

त्वमिन्द्रस्त्वं सोमस्त्वमसि तरणिस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वमसि पवनस्त्वञ्च गगनम् ।
विरञ्चिस्त्वं रुद्रस्त्वमसि सकलं दृश्यमिह यत्
त्वदन्यद् वस्त्वेकं नहि जगति भूमन् रघुपते* ।।३६।।

आप ही देवाधिपति इन्द्र हैं, आप ही चन्द्रमा (या सोमरस) तथा सूर्य हैं। आप ही अग्नि तथा जल तत्त्व हैं, आप ही भूमि तथा वायु हैं। आप ही ब्रह्मा तथा रुद्र के रूप में जगत् के सर्जक तथा संहारक हैं। वस्तुतः जो कुछ भी इस संसार में दिखाई दे रहा है वह सब प्रकारान्तर से आप ही हैं। हे सर्वव्यापी, आपके अतिरिक्त इस जगत् में और किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है ।।३६।।

त्वमेवादौ भूमन् निगमनिचयानां जलनिधौ
निमग्नानां चैवोद्धरणमकरोन्मीनवपुषा ।
सुधाकामैर्नीतं सलिलनिधिनिर्मन्थनविधौ
गिरिं पृष्ठे त्वं वै दृढकमठरूपेण धृतवान् ।।३७।।

जब वैदिक-वाङ्मय समुद्र में डूब गया था तो हे सर्वात्मन्, सृष्टि के प्रारम्भ में आपने ही मत्स्य रूप धारण करके उन वेदों को समुद्र से बाहर निकाला था। [उसके बाद] जब देवों ने अमृत प्राप्त करने की इच्छा से सागर का मन्थन किया और उसके लिये मन्दराचल को वहाँ लाये तो आपने ही एक शक्तिशाली कच्छप का रूप धारण करके उसको नीचे से सँभाला और उसे पीठ पर उठाये रहे ।।३७।।

---

*यह श्लोक 'शिवमहिम्नःस्तव' के—

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहः
त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत् तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ।।

से पूर्णतया प्रभावित है और एक प्रकार से उसकी छाया लगता है।

निहत्याजौ दैत्यं प्रलयजलधौ घोरमतुलम्
हिरण्याक्षं कृत्वा वपुरपि वराहस्य विपुलम् ।
समुद्धारं भूमेर्गिरिकुलयुतायाः सरभसं
महादंष्ट्राग्रेणामितगुणविधे त्वं च कृतवान् ।।३८।।

हे अनन्त गुणशाली, आपने एक विशाल वराह का रूप धारण करके प्रलयकालीन समुद्र में विचरण करते हुए उस अतुल-वलशाली, घोर दैत्य, हिरण्याक्ष का वध किया और तदनन्तर अपनी दंष्ट्रा के अग्रभाग पर सम्पूर्ण पर्वतों से युक्त पृथ्वी को उठाकर ऊपर ले आए ।।३८।।

स्वभक्तं प्रह्लादं परमविदुषामार्यममलं
विदित्वा त्वं पित्रा कृतविविधदण्डं कुमतिना ।
विधायोग्रं रूपं नरहरिविचित्रं त्रिनयनं
चकर्त त्वं दैत्येश्वरममितवीर्यं रघुपते ।।३९।।

जब आपको पता चला कि आपके भक्त प्रह्लाद को, जो परम विद्वान्, सच्चरित्र और निष्पाप था, उसके दुर्बुद्धि पिता (हिरण्यकशिपु) ने आपके प्रति भक्ति-भाव रखने के कारण अनेक प्रकार से दण्डित किया है तो आपने तीन नेत्रों से युक्त, सिंह का मिला-जुला एक विचित्र और उग्र रूप बनाया और उस अमित वलशाली दैत्यराज को चीर कर रख दिया ।।३९।।

शुनासीरैश्वर्यं हृतमतुलवीर्येण बलिना
विदित्वेदं राम प्रणतजनवात्सल्यजलधे ।
स्तुतस्त्वं शक्राद्यैरमरनिवहैर्वामनवपु-
र्विधायोग्रं वैरोचनकमुदवध्नोऽमररिपुम् ॥४०॥

हे राम, प्रणतजनों के लिये करुणा के सागर, जब आपको पता चला कि इन्द्र का ऐश्वर्य अतुलबलशाली दैत्यराज बलि ने छीन लिया है तो इन्द्रादि देवों के द्वारा आकर स्तुति करने पर आपने एक तेजस्वी वामन-रूप धारण किया और देवताओं के शत्रु उस बलि को [वरुणपाशों से] बाँध लिया ॥४०॥

कुलं क्षात्रं सप्तत्रिकमपि च कृत्वा रघुपते
जहर्थ त्वं राम प्रबलमिह शस्त्रास्त्रविशदम् ।
निहत्योग्रान् कंसप्रमुखदितिजान् यादवकुले
त्वमाविर्भूत्वा श्रीरमण भुवि भारं च हृतवान् ॥४१॥

शस्त्र-अस्त्र चलाने में कुशल, प्रबल बलशाली (आततायी) क्षत्रियों के कुल को, हे रघुपति, आपने [परशुराम का रूप धारण करके] इक्कीस बार विनष्ट किया। [तदनन्तर] हे लक्ष्मी के स्वामी, आपने [कृष्ण के रूप में] आविर्भूत होकर यादवों के कुल में उत्पन्न कंस आदि उग्र दैत्यों का विनाश करके पृथ्वी का भार हलका किया ॥४१॥

अनन्तान्येवं वै तव विविधरूपाण्यथ विभो
प्रवक्तुं तानीह प्रभवति न कोऽप्यत्र जगति ।
परात्मन् श्रीराम त्रिगुणरहिताकार नियम-
प्रभापारावारामितगुणनिधे चिद्घन विभो ।।४२।।

इस प्रकार, हे रामचन्द्रजी, आपके विभिन्न रूपों का कोई ओर-छोर नहीं है । वे अनन्त हैं और इस जगत् में कोई भी उनकी गणना नहीं कर सकता । आप जगत् के अणु-अणु में व्याप्त हैं (विभु) तथा सत्त्व-रजस्-तमस् रूप तीनों गुणों से रहित, विशुद्ध चैतन्य-स्वरूप, परमात्मा हैं । आपके गुण असंख्य और अपरिमेय हैं । आप जगत् के नियन्ता एवं अनन्त तेजोमय हैं ।।४२।।

नमस्ते श्रीराम त्वमितगुणगेहाय सततं
नमो भूयो भूयः पुनरपि नमस्ते रघुपते ।
नमो वेदावेद्याखिलमुनिगणाराध्य भगवन्
नमो भूयो भूयः शुभचरणपङ्केरुह विभो ।।४३।।

अनन्त गुणों के आगार, हे राम, आपको मेरा सदैव नमस्कार है । हे रघुपति, मैं आपको वारंवार पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ । सम्पूर्ण मुनिजनों के द्वारा आराधनीय एवं वेदों के द्वारा ही जाने जा सकने वाले, भगवन्, आपको मैं नमन करता हूँ । आपके मंगलमय चरणकमलों में मेरा वारंवार प्रणाम है ।।४३।।

सहस्रैः शेषोऽपि प्रभवति न वक्त्रैर्गुणगणान्
प्रवक्तुं चाकल्पं कथमपि च ते राम सततम् ।
अतो मर्त्यः स्तोतुं भवति कुशलः को रघुपते
व्रजन्त्याकाशस्य क्वचिदपि न पारं हि मशकाः ॥४४॥

आपके गुणों के समूह को यदि शेषनाग भी अपने एक सहस्र मुखों से कल्पर्यन्त निरन्तर वर्णन करते रहें तो भी वे उनका पार नहीं पा सकते, अतः कौन मरणधर्मा मनुष्य [अपने सीमित-जीवन काल में] उनका वर्णन करने में समर्थ हो सकता है ? ठीक भी है, मच्छर कभी अनन्त आकाश को पार करके उसके दूसरे छोर तक नहीं जा सकते ॥४४॥

मया ते पादाम्भोरुह युगलमाश्रित्य विमलम्
अयोध्यायां भक्त्या विविधपदरम्यैर्विरचितम् ।
पठेत् स्तोत्रं पुण्यं रघुकुलमणे यः प्रतिदिनं
स भुक्त्वा भोगान् वै व्रजति परमं शाश्वतपदम् ॥४५॥

मैंने आपके निर्मल चरण-कमलों का आश्रय लेकर [हे राम] अत्यन्त भक्ति-पूर्वक विविध सुरम्य पदों से अयोध्या नगरी में इस स्तोत्र की रचना की है। जो रघुकुल शिरोमणि श्रीराम के इस मंगलमय स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करेगा वह पृथ्वी पर अनेक भोगों को भोग कर अन्त में भगवान् के उस नित्य परम-धाम को प्राप्त करेगा ॥४५॥

तुभ्यं नमो भगवते रघुनन्दनाय
श्रीजानकीप्रियतमाय खरान्तकाय ।
योगीन्द्रपूजितपदाम्बुरुहद्वयाय
संसारदुःखशमनाय नमो नमस्ते ।।४६।।

हे जानकीवल्लभ, खर-दूषण आदि के निहन्ता, भगवान् रघुनन्दन आपको नमस्कार है। संसार के सभी दुःखों का शमन करने वाले और योगीश्वर भगवान् शंकर के द्वारा पूजित चरणकमल वाले श्रीराम, आपको वारंवार प्रणाम है ।।४६।।

कामाद्या दुर्जयाश्चेन्मम भवतु पुन-
र्मुक्तियोषित्सु कामः ।
क्रोधश्चेत् पातके वै तव चरणयुगाम्भो-
रुहे स्याच्चलोभः ।
मोहोऽप्यध्यात्मयोगे मम भवतु पुन-
र्मत्सरोऽपीन्द्रियेषु ।
त्वत्तोऽन्यद्राम सौख्यं त्वहमिह नितरां
नैव पश्यामि भूमौ ।।४७।।

[शास्त्रों में कहा गया है कि] काम-क्रोध आदि विकारों के ऊपर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। यदि ऐसा है और काम-वासना रहनी ही है तो मेरी इच्छा है कि मेरा मन मुक्तिरूपी स्त्री की कामना करे। क्रोध रहना ही है तो मैं पापकर्मों के ऊपर क्रोध करूँ। यदि लोभ से छुटकारा नहीं मिलना है तो मेरा लोभ आपके चरणकमलों के प्रति हो। मेरा मोह (आसक्ति) अध्यात्मयोग के प्रति रहे और मेरे मत्सर (अवमानना या घृणा) की पात्र मेरी इन्द्रियाँ हों [जो भोगों में लिप्त रहती हैं]। हे राम, तुमको छोड़-कर इस पृथ्वी पर अन्यत्र कहीं भी मैं सुख नहीं देखता ।।४७।।

।। इति श्रीमच्चतुर्भुजाचार्यचरणसरोजनिवासितमनश्चञ्चरीका-
स्वादितचिन्मकरन्दश्रीमद्रामाचार्यविरचितं
राममहिम्नःस्तोत्रं समाप्तम् ।।

